सांवली रंगत नीले काले गोदने, निर्मल आंखें, हंसते हुए होंठ वाली युवतियां कलाई से लेकर उपर बाजू तक हाथी दांत के कड़े, और गिलट के गहने पहन कर वहां की प्रकृति में रंग भर देती थीं। उन्हें देख कर स्कूल जाते हुए बरबस मेरे पांव ठिठक जाते थे

उनकी अपनी जाई हो। क्या अभी भी वहां ऐसा होता है ?

स्कूल से और आगे जाने पर एक सूना अनंत सा दिखने वाला मैदान था। उसके उपर आसमान में एक सफेद बहुत सफेद बहुत घना गद्दर नरम मुलायम बादल तरह तरह के आकार बनाया करता था। बादलों के ऐसे मस्तमौला ऊंट बस वहीं देखे थे। वे धीरे-धीरे हवा की जुगाली करते आगे आगे बढ़ते, मैं पीछे-पीछे चलती हुई थक-हार कर घर लौट आती थी। मैं सोचती थी कभी न कभी उसे छूकर देखूंगी । उसी मैदान में इमली का एक पेड़ राहगीरों को बताया करता था, मेघनगर से आने वाली बसें यहीं मिलेंगी। उस पेड़ पर यात्री अपने झोले टांग दिया करते थे। एक दिन मोहन खाटवे ने भी अपना झोला वहां टांगा था। उस झोले में एक और झोला था 'पदमावती' के थोड़े से सामान और कपड़ों का । पदमावती के बापू सा बहुत बड़े सेठ थे। उन्हें पदमावती का यह शिक्षक पसंद नहीं था। मोहन खाटवे सांवले, फिल्मी हीरो जैसे और बहुत हंसमुख युवक थे। कवितायें और नाटक लिखते थे और मंचन भी करते थे। एक बार उन्होंने किसी समारोह में नृत्य नाटिका प्रस्तुत की थी पदमावती राधा बन कर अत्यन्त सुन्दर लग रही थी। मुझे एक छोटी सी गोपी का काम करने का अवसर मिला था। पूरे झाबुआ में इस नाटक की बहुत चर्चा होती थी । मेरे पिता भी शासकीय महाविद्यालय में प्राध्यापक थे, उन्हें झाबुआ बाहरी दुनिया से अलग-थलग लगता था। इस पर मोहन खाटवे कहते थे - सर ये चाहे पाताल में भी क्यों न बसा हो यहां का जीवन बहुत सुन्दर है। मैं तो झाबुआ मर कर भी नहीं छोडूंगा।

उस दिन भी मेघनगर जाने वाली बस आई और चली भी गई। पर खाटवे और पदमावती का सामान वहीं टंगा रह गया। महीनों बीत गये। मोहन खाटवे का वो झोला अपनी छाती से लगा कर उनकी मां दिन रात भटकती रहती थी, जंगल में, झुरमुटों में, बस्ती में, बाजार में, गली गली हर मकान के पास ढूंढती, टेरती - मोहन रे कठे गयो, रे म्हारो कलेजो कदी आवेगो। साल दर साल बीत गये। खाटवे की मां झोला छाती से लगाये हुए किसी ओटले से टिकी हुई अधखुली आंखों से राह देखती हुई मिलती थी। क्या अब भी मोहन की मां की रो-रो कर पुकारती हुई आवाजें सुनाई देती होंगी ?

वहीं मैंने अपने जीवन की पहली शवयात्रा देखी थी। कौतुहल और डर के साथ मैंने अम्मां से पूछा क्या हुआ है ? एक बड़ा समूह अर्थी पर फूल और गुलाल उड़ाते हुए आगे बढ़ रहा था । एक अधेड़ बिलख-बिलख कर रो रहा था और अर्थी के दांये बांये होते हुए एक-एक से कह रहा था, मत ले जाओ मेरे बेटे को, फिर वह रास्ते में ही लोट गया - भगवती ओ भगवती मनें छोड़ के कठे जाई रियो। लोग उसे उठाकर किनारे कर देते और बहुत तेजी से आगे बढ़ जाते। वह फिर उठ कर रोता हुआ पीछे दौड़ता 'भगवती ओ भगवती म्हारा बेटा। ऐसा हृदयविदारक विलाप मेरे हदय में हमेशा के लिये एक ग्लेशियर बन कर जम गया है। मां ने कहा उसे टिटनेस हो गया था, अभी तक इसका कोई इलाज नहीं है। अब तो वहां सभी दवायें और डॉक्टर मिलते होंगे।

बाबुल स्टोर एक मात्र जनरल स्टोर्स था, बित्ते भर का। उसका मालिक सुन्दर सी चांद वाला, एक रजिस्टर में उधारी वालों का नाम लिखता था। कौन जाने वो रजिस्टर कहीं दबा पड़ा हो जिसमें अभी भी मेरी दीदी कृष्णा के नाम के आगे एक लेडीज पर्स कीमत छह रुपये लिखा मिल जाये।

जब अनास नदी से पानी भर कर लाने वाला टैंकर नहीं आता था तो लड़कियां और बच्चे यहां-वहां कुएं बावड़ी में पानी खोजते थे। उनमें भी गोरैया के नहाने लायक पानी होता था। सारे उपाय करने के बाद झाबुआ के लोग हिन्दू-मुस्लिम, जैन सब एक साथ आसमान की तरफ हाथ फैला कर गाते हुए निकलते थे- अल्ला मेघ दे पानी दे पानी दे गुड़घानी दे। क्या अभी भी पानी से भरे हुए बादल वहां से रुठे रहते हैं?

हमारे मकान के सामने वाली सड़क जब दाहिनी ओर बढ़ती थी तो एक बड़े चौराहे जैसी जगह से और पीली कोठी को पीछे छोड़ती हुई मुझे हाई स्कूल पहुंचाती थी क्योंकि मैंने पांचवी जो पास कर ली थी। अक्सर देर हो जाती थी मुझे, क्योंकि उस चौराहे जैसी जगह पर भील-भीलनियां मिल कर नाचते हुए मिल जााते थ । वे एक बड़ा गोला बना लेते थे गाते बजाते कदम ताल मिलाते हुए अपनी दुनिया में डूबे हुए आदिवासी। उनके सिरों से झूलते लाल-नीले-पीले झब्बे भी लय में झूलते थे। लड़कियों की कांचली . . . .खुली स्वस्थ चिकनी सांवली पीठ , सूती रंगीन, गोट लगे हुए ऊंचे ऊंचे घाघरे। उतनी कम उम्र में भी मेरे मन में न जाने क्यों यह विचार आता था कि इनका जीवन कितना सहज सरल है, इनके जीवन में बस आनंद ही आनंद है। सांवली रंगत नीले काले गोदने, निर्मल आंखें, हंसते हुए होंठ वाली युवतियां कलाई से लेकर उपर बाजू तक हाथी दांत के कड़े, और गिलट के गहने पहन कर वहां की प्रकृति में रंग भर देती थीं। उन्हें देख कर स्कूल जाते हुए बरबस मेरे पांव ठिठक जाते थे। इन्हें घर में कोई काम नहीं है भांति भांति के भोजन, झाड़ू पोंछा, कपड़े धोना और भी जाने क्या क्या । ये तो पोषाकें और गहने पहन कर तैयार हो जाते हैं और नाचते रहते हैं कितना मजा है ...। उसी बीच याद आया कि पिताजी को आज शाम बीस तक के पहाड़े और तीस तक साध्य पक्के रटे